INDIAN STREAMS RESEARCH JOURNAL

ISSN: 2230-7850
IMPACT FACTOR : 4.1625(UIF)
VOLUME - 6 | ISSUE - 12 | JANUARY – 2017

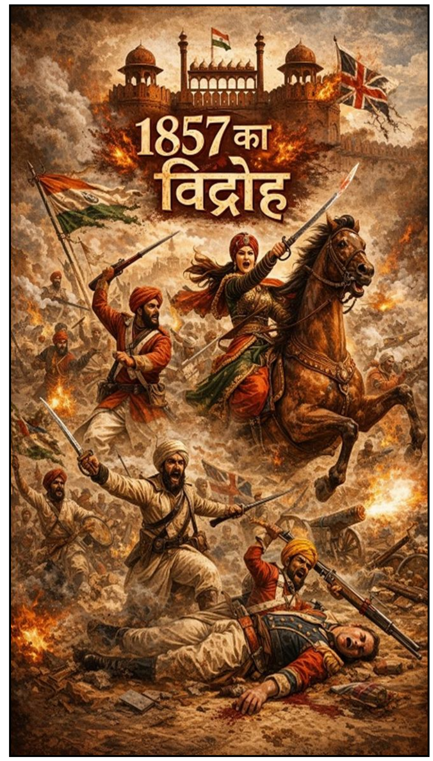

1857 के महाविद्रोह में डलहौजी का उत्तरदायित्व: एक विवेचनात्मक अध्ययन

डॉ. दिलीप कुमार
सहायक आचार्य — इतिहास,
महामाया राजकीय महाविद्यालय, श्रावस्ती(उ.प्र.)

1. सार

1857 का महाविद्रोह भारतीय इतिहास की वह निर्णायक घटना है जिसने ब्रिटिश साम्राज्यवाद की नींव को पहली बार गम्भीर रूप से हिला दिया। इस विद्रोह के अनेक कारण थे सैनिक असन्तोष, धार्मिक भय, आर्थिक शोषण और राजनीतिक अपमान किन्तु इन सभी के पीछे लॉर्ड डलहौजी (1848–1856) की नीतियों की केन्द्रीय भूमिका इतिहासकारों के मध्य सतत विमर्श का विषय रही है। प्रस्तुत शोधपत्र में डलहौजी की प्रमुख नीतियों — व्यपगत सिद्धान्त, सहायक सन्धि का विस्तार, अवध का विलय, रेलवे एवं आधुनिकीकरण की नीतियाँ और सेना में सुधार का विवेचनात्मक परीक्षण किया गया है। यह भी आकलन किया गया है कि इन नीतियों ने भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों में किस प्रकार असन्तोष और विद्रोह की भावना को जन्म दिया। निष्कर्ष यह है कि 1857 के महाविद्रोह का बीजारोपण डलहौजी के कार्यकाल में ही हो गया था, यद्यपि विद्रोह का एकमात्र कारण डलहौजी को मानना अतिसरलीकरण होगा।

2. शब्द कुंजी

डलहौजी, 1857 का महाविद्रोह, व्यपगत सिद्धान्त, अवध का विलय, सहायक सन्धि, ईस्ट इण्डिया कम्पनी, भारतीय स्वाधीनता संग्राम, ब्रिटिश साम्राज्यवाद, सैनिक असन्तोष, उपनिवेशवाद।

3. प्रस्तावना

भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी व्यापार करने की उद्देश्य से आई थी किंतु यहां की राजनीतिक अस्थिरता ने उनमें साम्राज्य विस्तार की महत्वाकांक्षा उत्पन्न की। जैसे-जैसे भारत में उनकी शक्तियां बढ़ती गई वैसे-वैसे उनका लालच भी बढ़ता गया। अब भारत में कंपनी का दोहरा लक्ष्य बन गया, प्रथम-अधिक से अधिक आर्थिक लाभ कमाना और द्वितीय इन किन-किन प्रकारों अपने साम्राज्य का विस्तार करना। यही दोनों लक्ष्य लेकर डलहौजी 1848 ईस्वी में भारत का गवर्नर जनरल बनकर आया। डलहौजी की नीतियों से भारत का प्रत्येक वर्ग असंतुष्ट और भयभीत हुआ। भारतीय नरेशों को लगा कि एक दिन उनका भी नंबर आएगा और अंग्रेज उनका राज्य हड़प लेंगे। इसी भाई और असंतोष का परिणाम था 1857 का विद्रोह। भले ही इस विद्रोह का आरंभ भारतीय नरेशों तथा जनता के द्वारा किया गया किंतु अन्य अवसरवादी व्यक्ति भी इसमें सम्मिलित हो गए।भारतीय इतिहास में 1857 का महाविद्रोह एक ऐसी ऐतिहासिक परिघटना है जिसकी व्याख्या को लेकर इतिहासकारों में आज भी गम्भीर मतभेद विद्यमान हैं। कुछ ब्रिटिश इतिहासकारों ने इसे केवल धर्म युद्ध, सभ्यता एवं बर्बरता के विरुद्ध संघर्ष व सिपाही विद्रोह आदि कहकर इसके व्यापक चरित्र को सीमित करने का प्रयास किया, तो भारतीय राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने इसे प्रथम स्वाधीनता संग्राम के रूप में स्थापित किया। किन्तु इस वाद-विवाद से परे एक प्रश्न ऐसा है जो इतिहास के प्रत्येक गम्भीर विद्यार्थी का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करता है — इस विद्रोह की वास्तविक पृष्ठभूमि किसने और किन नीतियों ने तैयार की?

इस प्रश्न का उत्तर खोजने पर अक्सर दृष्टि लॉर्ड डलहौजी पर जाकर टिकती है। 1848 से 1856 तक भारत के गवर्नर जनरल रहे डलहौजी ने अपने आठ वर्षों के शासनकाल में ऐसी नीतियाँ अपनाईं जिन्होंने भारतीय समाज के प्रत्येक वर्ग — देशी राजा, सैनिक, जमींदार, किसान, व्यापारी और धार्मिक नेता — में तीव्र असन्तोष उत्पन्न किया। जब 1857 में विद्रोह की ज्वाला भड़की, तो वह अचानक नहीं थी — वह डलहौजी के बोए बीजों की फसल थी [1]।

इतिहासकार जॉन के के अनुसार डलहौजी की नीतियाँ उन सभी तत्त्वों को एक साथ क्रुद्ध करने में सफल रहीं जो अन्यथा पृथक-पृथक ही रहते। प्रस्तुत शोधपत्र डलहौजी की प्रमुख नीतियों और उनके 1857 के महाविद्रोह से सम्बन्ध का विवेचनात्मक परीक्षण करता है।

4. डलहौजी से पूर्व भारत की राजनीतिक स्थिति

डलहौजी की नीतियों के महत्त्व को समझने के लिए यह आवश्यक है कि उससे पूर्व भारत की राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों पर संक्षेप में दृष्टि डाली जाए। 1848 तक ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भारत के एक बड़े भाग पर नियन्त्रण स्थापित कर लिया था, किन्तु अनेक देशी रियासतें अभी भी अपनी अर्ध-स्वायत्त स्थिति बनाए हुए थीं।

पंजाब, अवध, झाँसी, नागपुर, सातारा और अनेक अन्य रियासतें अपने-अपने शासकों के अधीन थीं। इनमें से कुछ कम्पनी के साथ सहायक सन्धि से बँधी थीं, तो कुछ अपेक्षाकृत स्वतन्त्र थीं। इन रियासतों के शासक और सामन्त वर्ग अपने विशेषाधिकारों और पारम्परिक सत्ता को बनाए रखने के लिए सतर्क थे [2]।

ब्रिटिश भारतीय सेना में भारतीय सिपाहियों का अनुपात यूरोपीय सैनिकों से कहीं अधिक था। ये सिपाही मुख्यतः उत्तर भारत के उच्च जाति के हिन्दू और मुसलमान थे जो अपनी जाति, धर्म और परम्पराओं के प्रति अत्यन्त संवेदनशील थे। उनके मन में यह विश्वास था कि अंग्रेज उनकी धार्मिक आस्थाओं में हस्तक्षेप नहीं करेंगे डलहौजी के काल में यह विश्वास धीरे-धीरे खण्डित होने लगा।

5. व्यपगत सिद्धान्त और उसके परिणाम

डलहौजी की सर्वाधिक विवादास्पद और दूरगामी परिणामों वाली नीति थी 'व्यपगत सिद्धान्त' (Doctrine of Lapse)। प्राचीन काल से भारत में प्रत्येक हिंदू को परंपरा एवं धर्म के अनुसार यह अधिकार था कि यदि अपना कोई पुत्र नहीं है तो वह किसी भी लड़के को दत्तक पुत्र के रूप में ग्रहण कर सकता है और वह दत्त पुत्र सभी प्रकार से अपने पिता का उत्तराधिकारी बन जाता था, किंतु अंग्रेजों का बनाया हुआ यह सिद्धान्त यह प्रावधान करता था कि यदि किसी देशी रियासत का शासक बिना प्राकृतिक उत्तराधिकारी के मर जाए, तो उसकी रियासत स्वतः ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधीन हो जाएगी। दत्तक पुत्र को उत्तराधिकार का अधिकार नहीं माना जाएगा।

यह सिद्धान्त नया नहीं था इसका प्रयोग डलहौजी के पूर्वी कई गवर्नर जनरल ने किया था किंतु डलहौजी से पूर्व किसी भी गवर्नर जनरल ने राज्य अधिग्रहण के आशय से इस सिद्धांत को लागू नहीं किया था, इस बात का प्रमाण जान सुलिवान कि इस कथन से होता है कि 1826 से 48 के बीच लगभग 15 नरेशों के दत्तक पुत्र के उत्तराधिकार को अंग्रेजों ने स्वीकार किया था, यद्यपि अन्यत्र ऐसे उदाहरण मिलते हैं जब अंग्रेजों ने दत्तक को स्वीकार नहीं किया फिर भी उसे समय यह अस्वीकृति इसलिए नहीं थी कि उसके राज्य का अधिग्रहण कर लिया जाए, किंतु डलहौजी ने इस सिद्धांत का प्रयोग निष्ठुरता से मात्र राज्य अधिग्रहण के आशय से किया। डलहौजी ने इस सिद्धान्त के आधार पर सातारा (1848), जैतपुर (1849), सम्भलपुर (1849), बघाट (1850), उदयपुर (1852), झाँसी (1853) और नागपुर (1854) को ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया ।[3]

इन सभी विलयों में झाँसी का विलय सर्वाधिक प्रतीकात्मक महत्त्व का है। रानी लक्ष्मीबाई के पति राजा गंगाधर राव ने मृत्यु से पूर्व एक बालक को दत्तक पुत्र के रूप में ग्रहण किया था और ब्रिटिश सरकार से उसे मान्यता देने का अनुरोध किया था। डलहौजी ने इस अनुरोध को अस्वीकार कर दिया और झाँसी को 1853 में कम्पनी के राज्य में मिला लिया। रानी लक्ष्मीबाई का 'मैं अपनी झाँसी नहीं दूँगी' का संकल्प इसी अन्याय की प्रतिक्रिया थी और यही भावना 1857 के विद्रोह की एक प्रबल प्रेरणा बनी।

व्यपगत सिद्धान्त ने केवल राजाओं को ही नहीं, उनके दरबार में जीवन यापन करने वाले हजारों पेंशनभोगी, सैनिक, अधिकारी और सामन्तों को भी प्रभावित किया। इन सभी का जीवन रियासतों की आय पर निर्भर था — जब रियासतें समाप्त हुईं, तो उनकी आजीविका भी समाप्त हो गई। यह विशाल असन्तुष्ट वर्ग 1857 के विद्रोह में एक महत्त्वपूर्ण भागीदार बना [4]।

6. अवध का विलय — महाविद्रोह की प्रत्यक्ष पृष्ठभूमि

यदि व्यपगत सिद्धान्त 1857 के विद्रोह की दूरस्थ पृष्ठभूमि था, तो अवध का विलय उसकी प्रत्यक्ष और तात्कालिक पृष्ठभूमि था। 1856 में डलहौजी ने नवाब वाजिद अली शाह के कुशासन का आरोप लगाकर अवध को ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया।

अवध का विलय व्यपगत सिद्धान्त के आधार पर नहीं हुआ, वहाँ उत्तराधिकारी था। डलहौजी ने कुशासन के आरोप को आधार बनाया। किन्तु आलोचकों का तर्क है कि यह आरोप पूरी तरह निष्पक्ष नहीं था और यह वास्तव में अवध की सम्पत्ति और रणनीतिक स्थिति पर नियन्त्रण पाने का बहाना था, क्योंकि डलहौजी की दो रिपोर्टर स्लीमैन और आउट्रम जो निष्पक्ष नहीं थे क्योंकि डलहौजी की प्रॉब्लम से ग्रसित थे, जैसा कि तत्कालीन पत्रों से सिद्ध हो चुका है कि डलहौजी ने स्लीमैन को अधिग्रहण के पश्चात प्रथम शासन प्रबंधक बनाने का लालच दे रखा था। इसलिए उसकी रिपोर्ट तो डलहौजी के पक्ष में ही आती है और यही हुआ तथा डलहौजी ने इस आधार पर अवध का अधिग्रहण कर लिया। किंतु इस बात का प्रमाण अवश्य मिलता है कि वास्तव में अवध का शासन इतना खराब नहीं था। 1818 ईस्वी में अवध की बढ़ती हुई जनसंख्या, उन्नत कृषि और अच्छी स्थिति के लिए लॉर्ड हेस्टिंग्स ने स्वयं तत्कालीन नवाब को बधाई दी थी। हीबर जो स्वयं 1824- 25 ईस्वी में अवध में अच्छी तरह घूमा था उसने लिखा था कि वहां खेती की अच्छी स्थिति को देखकर उसे प्रसन्नता एवं आश्चर्य हुआ। कोई यह विश्वास नहीं कर सकता की यहां के नगर क्यों अत्याचार हो रहा है, जैसा कि अक्सर बताया जाता है। हीबर ने यह भी लिखा है कि जब उसने अवध के नागरिकों से पूछा कि क्या वे अंग्रेजी राज्य में मिलना पसंद करेंगे तो उनका उत्तर था कि कभी नहीं चाहेंगे अतः अंग्रेजों का नवाब पर कुशासन का आरोप निराधार था, फिर भी अवध का अधिग्रहण किया गया और नवाब को पेंशन देकर कलकत्ता भेज दिया गया और उनका सम्पूर्ण दरबार, सेना और प्रशासन तंत्र बिखर गया [5]।

अवध के विलय का सबसे गम्भीर प्रभाव ब्रिटिश भारतीय सेना के सिपाहियों पर पड़ा। बंगाल आर्मी में अवध के सिपाहियों का अनुपात सर्वाधिक था। अवध के सिपाही अपनी भूमि, अपने परिवार और अपने नवाब के प्रति गहरी भावनात्मक निष्ठा रखते थे। जब अवध का विलय हुआ, तो इन सिपाहियों की पारिवारिक भूमि पर भी नई भूराजस्व व्यवस्था लागू हुई और उनके परिजन कठिनाई में पड़ गए। इस व्यक्तिगत आघात ने उनके व्यावसायिक असन्तोष को और अधिक तीव्र कर दिया।

अवध का विलय केवल एक राजनीतिक घटना नहीं थी यह एक सांस्कृतिक विनाश भी था। लखनऊ उस समय भारत का एक प्रमुख सांस्कृतिक केन्द्र था जहाँ उर्दू साहित्य, संगीत, कला और तहज़ीब की एक विशिष्ट परम्परा पल्लवित हो रही थी। ब्रिटिश विलय ने इस सम्पूर्ण सांस्कृतिक परिवेश को छिन्न-भिन्न कर दिया इससे उत्पन्न सांस्कृतिक आघात और अपमान की भावना ने 1857 के विद्रोह को एक गहरी भावनात्मक ऊर्जा प्रदान की [6]।

7. सैनिक नीतियाँ और असन्तोष

1857 के विद्रोह का तात्कालिक कारण चर्बी वाले कारतूसों का प्रश्न था, किन्तु इसके पीछे डलहौजी के काल में संचित सैनिक असन्तोष की एक गहरी परत थी। डलहौजी की सैनिक नीतियों ने भारतीय सिपाहियों के मन में अनेक प्रकार की शिकायतें उत्पन्न की थीं। बंगाल की सेना के अधिकांश सैनिक अवध राज्य की थी और अवध को अंग्रेजी राज्य में मिले जाने से वे क्षुब्ध थे।

पंजाब की विजय के बाद सिख सैनिकों को अंग्रेजों ने विश्वास दिलाया था कि उन्हें दाढ़ी या बाल हटाने के लिए नहीं कहा जाएगा, किंतु अंग्रेजों ने हटाने का आदेश जारी किया तो उनकी आशंका और बढ़ गई की अंग्रेज उनके धर्म को भी नष्ट करने पर तुले हुए हैं। ऐसी स्थिति में चर्बी वाले कारतूसों में आग में घी का काम किया और विद्रोह का तात्कालिक कारण बना

डलहौजी और उनके उत्तराधिकारी लॉर्ड कैनिंग के काल में लागू सामान्य सेवा अधिनियम (General Service Enlistment Act, 1856) ने सिपाहियों में गहरा असन्तोष पैदा किया। इस अधिनियम के अन्तर्गत सिपाहियों को समुद्र पार सेवा के लिए बाध्य किया जा सकता था। उच्च जाति के हिन्दू सिपाहियों के लिए समुद्र पार यात्रा धर्म-भ्रष्ट करने वाली मानी जाती थी इस अधिनियम ने उनकी धार्मिक भावनाओं पर आघात किया [7]।

डलहौजी के काल में भारतीय सिपाहियों की पदोन्नति की सीमाएँ और अधिक कठोर हो गईं। यूरोपीय अधिकारियों को भारतीय सैनिकों के ऊपर सुनिश्चित प्राथमिकता मिलती थी। एक अनुभवी और योग्य भारतीय सैनिक सूबेदार से ऊपर नहीं जा सकता था, जबकि एक नवनियुक्त यूरोपीय अधिकारी उससे वरिष्ठ माना जाता था। यह भेदभाव सिपाहियों के स्वाभिमान को ठेस पहुँचाता था।

पंजाब और सिन्ध की विजय के पश्चात् सिपाहियों को मिलने वाला 'विदेश भत्ता' समाप्त कर दिया गया क्योंकि ये क्षेत्र अब ब्रिटिश भारत का हिस्सा बन गए थे। इससे सिपाहियों की वास्तविक आय में कमी आई। आर्थिक असन्तोष और धार्मिक भय का यह संयोजन विस्फोटक साबित हुआ [8]।

8. भूमि राजस्व नीति और आर्थिक असन्तोष

डलहौजी की नीतियों का प्रभाव केवल राजाओं और सैनिकों तक सीमित नहीं था — उसकी भूमि राजस्व नीतियों ने किसानों और जमींदारों के बीच भी व्यापक असन्तोष उत्पन्न किया।

डलहौजी के काल में बम्बई प्रेसीडेन्सी में 'इनाम कमीशन' (Inam Commission) स्थापित किया गया जिसने हजारों परम्परागत भूमि-अनुदानों की जाँच की और उनमें से बड़ी संख्या को रद्द कर दिया। इन अनुदानों पर जीवन यापन करने वाले सैनिक, पुजारी, ग्राम प्रशासक और अन्य वर्गों की आजीविका संकट में पड़ गई। यह आर्थिक विस्थापन 1857 के विद्रोह में महत्त्वपूर्ण भागीदारी का एक कारण था।

डलहौजी के काल में रेलवे, तार और डाक-सेवाओं के विकास ने जहाँ एक ओर आधुनिकीकरण का मार्ग प्रशस्त किया, वहीं दूसरी ओर पारम्परिक व्यापार और हस्तशिल्प उद्योगों पर गहरा आघात पड़ा। ब्रिटेन से आयातित मशीन-निर्मित वस्त्र भारतीय बुनकरों की आजीविका के लिए एक गम्भीर चुनौती बन गए। इस आर्थिक असन्तोष ने विद्रोह के लिए एक विस्तृत जन-आधार तैयार किया [9]।

9. धार्मिक एवं सांस्कृतिक हस्तक्षेप की आशंका

1857 के विद्रोह के सबसे महत्त्वपूर्ण कारणों में से एक था — धर्म और संस्कृति के विनाश का भय। यद्यपि डलहौजी स्वयं धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप का नीतिगत समर्थक नहीं था, किन्तु उसके काल में जो घटनाएँ हुईं, उन्होंने इस भय को पुष्ट किया।

डलहौजी के काल में ईसाई मिशनरियों को भारत में धर्म-प्रचार की खुली छूट थी। मिशनरी न केवल शहरों में बल्कि सैनिक छावनियों तक पहुँच रहे थे। सिपाहियों को लगने लगा कि सरकार उन्हें ईसाई बनाना चाहती है। यह आशंका भले ही आंशिक रूप से अतिरंजित थी, किन्तु इसने सिपाहियों की मानसिकता पर गहरा प्रभाव डाला।

ब्रिटिश सरकार द्वारा सती प्रथा का उन्मूलन (1829) और विधवा पुनर्विवाह अधिनियम (1856) जैसे कदमों को रूढ़िवादी भारतीय समाज ने अपनी सांस्कृतिक परम्पराओं में हस्तक्षेप के रूप में देखा। डलहौजी के काल में भी ऐसे सुधारों की आँधी चल रही थी जिसने परम्परावादी वर्ग को बेचैन कर दिया [10]।

जनवरी 1857 में यह अफवाह फैली कि नई एनफील्ड राइफल के कारतूसों में गाय और सुअर की चर्बी का प्रयोग किया गया है। हिन्दू और मुसलमान सिपाहियों — दोनों के लिए यह धर्म-भ्रष्ट करने वाला था। यद्यपि यह घटना डलहौजी के जाने के बाद हुई, किन्तु इसके पीछे जो मानसिकता थी — धर्म के विनाश का भय — वह डलहौजी के काल की नीतियों ने ही बोई थी।

10. इतिहासकारों के दृष्टिकोण: एक समीक्षात्मक विवेचन

1857 के महाविद्रोह में डलहौजी की भूमिका और उत्तरदायित्व को लेकर इतिहासकारों में परस्पर भिन्न और कभी-कभी विरोधाभासी मत मिलते हैं। इस विविधता का परीक्षण हमें विषय की जटिलता और बहुआयामी प्रकृति को समझने में सहायता करता है।

जॉन लॉरेंस और कुछ अन्य ब्रिटिश प्रशासकों ने डलहौजी की नीतियों — विशेषकर व्यपगत सिद्धान्त और अवध के विलय — को 1857 के विद्रोह के लिए प्रमुख रूप से उत्तरदायी माना। लॉर्ड एलेनबरो ने ब्रिटिश संसद में यह स्वीकार किया कि अवध का विलय एक भयंकर भूल थी। इस दृष्टिकोण के अनुयायी मानते हैं कि डलहौजी की अति-आक्रामक नीतियों ने अनावश्यक रूप से भारतीय समाज के सभी वर्गों को एक साथ शत्रु बना दिया।

विनायक दामोदर सावरकर जैसे राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने 1857 को 'प्रथम स्वाधीनता संग्राम' के रूप में परिभाषित किया और डलहौजी की नीतियों को साम्राज्यवादी शोषण का प्रतीक माना। इस दृष्टिकोण में डलहौजी एक ऐसे शोषक के रूप में उभरता है जिसने भारतीय राज्यों, संस्कृति और अर्थव्यवस्था को जानबूझकर नष्ट किया।

बिपिन चन्द्र, सुमित सरकार और अन्य आधुनिक इतिहासकारों ने एक अधिक सन्तुलित दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार 1857 के विद्रोह के कारण बहुआयामी थे और उन्हें केवल डलहौजी तक सीमित करना उचित नहीं होगा। डलहौजी की नीतियाँ ब्रिटिश औपनिवेशिक व्यवस्था के एक व्यापक ढाँचे का हिस्सा थीं जो उससे पूर्व भी विद्यमान थी और उसके पश्चात् भी जारी रही।

डलहौजी स्वयं अपनी नीतियों को भारत के हित में मानता था। उसका तर्क था कि व्यपगत सिद्धान्त द्वारा जो रियासतें ली गईं, वे दुर्शासन और अव्यवस्था से ग्रस्त थीं — उनकी जनता को कम्पनी के शासन में अधिक सुरक्षा और न्याय मिलेगा। रेलवे और आधुनिक संचार-व्यवस्था को वह भारत के लिए वरदान मानता था। किन्तु उसने यह नहीं समझा कि परिवर्तन की गति और तरीका उतना ही महत्त्वपूर्ण होता है जितना परिवर्तन की दिशा।

11. निष्कर्ष

डलहौजी की विलय एवं वीजयों के उपरांत ब्रिटिश साम्राज्य में लगभग ढाई लाख वर्ग मील का क्षेत्र सम्मिलित हुआ, भारत की सीमाएं सिक्किम विलय के बाद तिब्बत और चीन की सीमाओं को छूने लगी, डलहौजी की देसी राज्यों को हड़पने की नीति सर्वथा अन्यायपूर्ण और अनुचित थी। उसकी राज्य विस्तार की नीति से न केवल भारतीय जनता तथा भारतीय नरेश बल्कि भारत का प्रत्येक वर्ग प्रभावित हुआ और उसका असंतोष अपनी पराकाष्ठा पर पहुंचा जिसका परिणाम1857 के महाविद्रोह के रूप में दिखाई पड़ता है फिर भीलॉर्ड डलहौजी के उत्तरदायित्व का प्रश्न न तो 'हाँ' में और न ही 'नहीं' में उत्तरित किया जा सकता है, क्योंकि उसकी रेलवे मार्ग नेहरे और सार्वजनिक निर्माण की दूरगामी योजनाओं ने उसे आधुनिक भारत का निर्माता के रूप में लाकर खड़ा कर दिया। वास्तव में 1857 के महाविद्रोह के लिए डलहौजी कितना उत्तरदाई था,यह एक जटिल ऐतिहासिक समस्या है जिसके लिए सूक्ष्म और बहुआयामी विश्लेषण अपेक्षित है।

एक ओर यह निर्विवाद है कि डलहौजी की नीतियों ने 1857 के विद्रोह की आधारशिला तैयार की। व्यपगत सिद्धान्त ने देशी राजाओं और उनके आश्रित वर्गों को विद्रोह के लिए प्रेरित किया। अवध के विलय ने बंगाल आर्मी के सर्वाधिक संवेदनशील भाग अवधी सिपाहियों में तीव्र असन्तोष उत्पन्न किया। सामान्य सेवा अधिनियम और धार्मिक हस्तक्षेप की आशंका ने सिपाहियों की मानसिकता को विद्रोह के लिए तैयार किया। भूमि-राजस्व नीतियों ने किसानों और जमींदारों को असन्तुष्ट किया।

दूसरी ओर, यह भी स्वीकार करना होगा कि डलहौजी एकमात्र कारण नहीं था। विद्रोह के सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और सांस्कृतिक आयाम थे जो ब्रिटिश उपनिवेशवाद की दीर्घकालिक प्रक्रिया के परिणाम थे। डलहौजी ने उस व्यवस्था को और अधिक आक्रामक बनाया, किन्तु उसे उत्पन्न नहीं किया।

डलहौजी की सबसे बड़ी भूल यह थी कि उसने अपनी नीतियों की गति और व्यापकता का उचित आकलन नहीं किया। उसने एक साथ इतने अधिक वर्गों को चोट पहुँचाई कि वे सब मिलकर एक विशाल विद्रोह में परिणत हो गए। इतिहास का यह पाठ आज भी प्रासंगिक है । जब कोई शक्ति अपनी नीतियों की मानवीय और सामाजिक कीमत का हिसाब नहीं रखती, तो वह इतिहास के न्यायालय में उत्तरदायी ठहराई जाती है। डलहौजी इसी न्यायालय में आज भी खड़ा है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

[1] के, जॉन — A History of the Sepoy War in India 1857–58, Vol. I, W.H. Allen & Co., लन्दन, 1864।

[2] मलेसन, जी.बी. — History of the Indian Mutiny, Vol. I–III, W.H. Allen & Co., लन्दन, 1878।

[3] सेन, सुरेन्द्रनाथ — Eighteen Fifty-Seven, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली, 1957।

[4] सावरकर, वि.दा. — 1857 का स्वातंत्र्य समर, हिन्दी अनुवाद, लोकहित प्रकाशन, लखनऊ।

[5] स्लीमन, विलियम — A Journey through the Kingdom of Oude, Vol. I & II, रिचर्ड बेन्टले, लन्दन, 1858।

[6] चन्द्र, बिपिन — India's Struggle for Independence, पेंगुइन बुक्स, नई दिल्ली, 1989।

[7] सरकार, सुमित — Modern India 1885–1947, मैकमिलन इण्डिया, नई दिल्ली, 1983।

[8] माजूमदार, आर.सी. — The Sepoy Mutiny and the Revolt of 1857, फर्मा के.एल. मुखोपाध्याय, कलकत्ता, 1963।

[9] मेटकाफ, थॉमस — The Aftermath of Revolt: India 1857–1870, प्रिन्सटन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1964।

[10] पाण्डेय, ज्ञानेन्द्र — The Construction of Communalism in Colonial North India, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1990।